इस स्तम्भ के अन्तर्गत हम देश के विभिन्न हिस्सों में क्रान्तिकारी छात्र-युवा मोर्चे पर सक्रिय कार्यकर्ताओं, प्रगतिशील युवा संस्कृतिकर्मियों और नारी मोर्चे की युवा सिपाहियों के अनुभवों और विविध समसामयिक ज्वलन्त प्रश्नों पर उनके विचारों को नियमित रूप से प्रकाशित करेंगे।

यह स्तम्भ क्रान्तिकारी परिवर्तन के विभिन्न मोर्चों पर सक्रिय युवाओं के आपसी विचार-विमर्श का, अनुभवों के आदान-प्रदान का तथा चिन्ताओं-चुनौतियों की साझेदारी का मंच है। उनके विचारों की निर्बन्ध अभिव्यक्ति सबसे जरूरी है जो ठोस व्यवहार में लगे हैं। सही विचार का वास्तविक स्रोत व्यवहार है–सामाजिक कामों में भागीदारी है, और विचार की एकमात्र सार्थकता यही है कि वह हमारे व्यवहार का मार्गदर्शक बने। जो युवा क्रान्तिकारी बदलाव के सिर्फ सपने नहीं देखते बल्कि उसकी ठोस परियोजना को क्रियान्वित करने की कोशिश करते हैं, यह स्तम्भ उन्हीं का मंत्रणा-कक्ष है, उन्हीं की चौपाल है। इसमें भागीदारी के लिए हम सभी क्रान्तिकारी छात्र-युवा संगठनकर्ताओं-कार्यकर्ताओं को आमंत्रित करते हैं।

-सम्पादक

उत्तर प्रदेश में छात्रसंघ का लॉलीपॉप

–शालिनी, इलाहाबाद

आगामी लोकसभा चुनावों के मद्देनजर केन्द्र और सभी राज्यों की सरकारों ने धुँआधार लोकलुभावन घोषणाओं का सिलसिला जारी कर रखा है। शोषकों-लुटेरों के चुनावी चाकरों के घड़ियाली आँसुओं से बाढ़ आने-आने को है। भाँति-भाँति के दलबदलू गिरगिटों और गिरोह सरदारों को मिलाकर बनी मुलायम सिंह की सरकार भी वायदों-घोषणाओं की इस होड़ में किसी से पीछे नहीं है।

कुर्सी पर बैठते ही मुलायम सिंह ने प्रदेश के छात्रों को छात्रसंघ चुनाव का अधिकार सौंपने का ऐलान किया। ऐसा इसलिए नहीं कि डाला और चुर्क में कभी मजदूरों पर गोली चलवा चुके और देश के शीर्षस्थ पूँजीपतियों की उपस्थिति में शपथ ग्रहण करने वाले मुलायम जनतांत्रिक मूल्यों और युवा हितों के बहुत बड़े अलमबरदार हैं। असल बात यह है कि 18 से 30 वर्ष के युवाओं का वोट बैंक आज सबसे बड़ा है और चुनावी चालों के चतुर खिलाड़ी मुलायम की गिद्धदृष्टि इस वोट बैंक पर है। दूसरी बात, सभी चुनावी पूँजीवादी दलपतियों की तरह मुलायम भी यह भलीभाँति समझते हैं कि बेरोजगार छात्रों-युवाओं के बीच से न केवल जुनूनी चुनाव प्रचारकों की भाड़े की फौज आसानी से तैयार होती है, बल्कि बुर्जुआ राजनीति के वारिस भी वहीं से आते हैं। संघ परिवार के पास शाखाओं, शिशु मन्दिरों और अ.भा.वि.प. के रूप में उत्तराधिकारियों की तैयारी का अपना नेटवर्क है, इसलिए भाजपा सरकारों ने छात्र संघों को भंग करने का निर्णय लिया था। लेकिन सपा, कांग्रेस, और चुनावी वामपंथियों के लिए कैम्पसों की राजनीति कार्यकर्ता-भरती और वारिस-तैयारी का सबसे उचित साधन है। सभी चुनावी मदारी जानते हैं कि छात्र राजनीति को यदि एम.एल.ए.-एम.पी. बनने का प्रशिक्षण-केन्द्र नहीं बनाया जायेगा तो वह क्रान्तिकारी राजनीति का भरती केन्द्र और प्रशिक्षण केन्द्र बन जायेगा। हुकूमत चलाने वाले भी इस बात को जानते हैं कि निजीकरण-उदारीकरण कुचक्र से बढ़ती बेरोजगारी के चलते युवाओं में किस कदर गुस्सा सुलग रहा है। इसलिए उन्हें कुछ-कुछ लॉलीपॉप थम्हाने की कोशिशें तो होनी ही थीं।

सत्ताधारी यह भी भलीभाँति समझते हैं कि फिलहाल क्रान्तिकारी छात्र राजनीति के बिखराव और ठहराव के चलते, उनके सामने कैम्पसों में कोई चुनौती नहीं हैं और छात्रसंघ चुनावों का वे अभी अपने हक में भरपूर इस्तेमाल कर सकते हैं। पिछले दिनों के अनुभव ने भी यही सिद्ध किया है।

पिछले वर्ष के आखिरी महीनों में छात्र संघ चुनाव उत्तर प्रदेश के सभी विश्वविद्यालयों और डिग्री कालेजों में कराये गये। लेकिन इतने सालों बाद भी चुनाव-बहाली का उत्साह केवल भूतपूर्व छात्र नेताओं और नये उम्मीदवारों के चेहरों पर ही दिखाई दिया। आम छात्रों-छात्राओं में इसको लेकर कोई उत्साह नहीं था। इन उम्मीदवारों में शामिल किसी भी पार्टी का छात्र संगठन हो, इससे कोई फर्क नहीं रह गया है। आम छात्र अब यह जान चुके हैं कि चाहे कोई भी पार्टी का उम्मीदवार जीते, इससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा। जिन उद्देश्यों को लेकर छात्र संघ का निर्माण किया गया था, उसे सही रूप में लागू करने की क्षमता आज किसी में भी नहीं रहा है। सभी छात्र नेताओं के लिए यह एक 'ट्रेनिंग सेण्टर' बन गया है जिसके लिए यह अनुभव भविष्य में एम.पी.-एम.एल.ए. का चुनाव लड़ने में काम आएगा।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय में छात्रसंघ का चुनाव 1 अक्टूबर को हुआ। इसमें भाग ले रहे तथाकथित वामपंथी शिविर के कुछ संगठनों ने भी अपने-अपने उम्मीदवार खड़े किये थे, लेकिन उन्हें कोई सफलता नहीं मिली। इसका मुख्य कारण यह लगता है कि आज छात्रों-नौजवानों के बीच ये संगठन अपना विश्वास पूरी तरह से खो चुके हैं, क्योंकि इन संगठनों के साथ जुड़े युवा भी आम छात्रों की तरह आई.ए.एस./पी.सी.एस. की तैयारी में लगे हुए हैं। इनका सपना भी भविष्य में कल-पुर्जा बनकर इसी व्यवस्था की सेवा करना है। ऐसे सपने संजोने वाले इन संगठनों के तथाकथित हिरावल हमारे युवा वर्ग के प्रेरणा-स्रोत नहीं बन सकते, क्योंकि इनसे प्रेरणा लेना समाज परिवर्तन के महान उद्देश्यों

के साथ बड़ी गद्दारी करना होगा। ऐसे लोग स्वयं जीवन में कहीं-न-कहीं समझौता करेंगे और युवा-वर्ग को भी अन्धेरे की कालकोठरी में कैद कर देंगे, जहाँ से बाहर निकालना और फिर से विश्वास जीतना बहुत कठिन काम होगा।

अब नौजवानों को नयी उम्मीदों का, नये तूफ़ानों का इन्तज़ार है। आज जो भी ग्रुप इससे अलग नये-नये प्रयोग करने का संकल्प लेगा, वह कुछ समय तक अकेले पड़ कर भी साहस के साथ काम करेगा। तभी वह युवा-वर्ग का विश्वास जीत सकता है तथा भविष्य में छात्र-नौजवान उसके साथ आकर खड़े होंगे।

यह देश है जागीर जिनके बाप की शिक्षा भी है उन्हीं की, न हमारी न आपकी!

–गीतिका, इलाहाबाद

उत्तरी बिहार, पूर्वी उत्तर प्रदेश में बहुत दिनों से एक जनकवि का एक भोजपुरी लोकगीत काफी लोकप्रिय रहा है, जिसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :

...उनके लरिका त पढ़ेला बिलायत जाइके
हमरे लरिका के जुरे ना किताब भाईजी
रउरा सासन के बाटे ना जवाब भाईजी
रउरा कुरुसी से झरेला गुलाब भाईजी...

शिक्षा को अमीरजादों का विशेषाधिकार बनाने का जो सिलसिला राजीव गाँधी की 'नयी शिक्षा नीति' के साथ 1986 में शुरू हुआ था, वह अब बहुत आगे जा चुका है। केन्द्र की भाजपा सरकार हो या राज्यों की किसी भी पार्टी की सरकार, इस मामले में कोई किसी से पीछे नहीं। आखिर ऐसा हो भी क्यों न! सभी सरकारें तो पूँजीपतियों की ही मैनेजिंग कमेटियाँ हैं। अम्बानी-बिड़ला कमेटी ने केन्द्र सरकार के सामने उच्च शिक्षा के पूर्ण बाजारीकरण की सिफारिशें पेश कीं और अब वही अम्बानी अन्य थैलीशाहों के साथ "समाजवादी" मुलायम को उत्तर प्रदेश के "विकास" में खास मदद देने वालों में शामिल है।

फीस वृद्धि और अनुदान-समाप्ति की जो घोषणाएँ पहले चोर दरवाजे से लागू की जाती थीं, अब वे डंके की चोट पर की जा रही हैं।

अभी कुछ ही महीनों पहले इलाहाबाद विश्वविद्यालय, लखनऊ विश्वविद्यालय, काशी विद्यापीठ व अन्य विश्वविद्यालयों के कुलपतियों के साथ हुई बैठक में राज्यपाल विष्णुकान्त शास्त्री ने तो बाकायदा घोषणा ही कर दी कि विश्वविद्यालय अपने संसाधन खुद जुटाएँ–"विश्वविद्यालयों के खर्च से मुक्ति चाहता है शासन।" बैठक में यह स्पष्ट कर दिया गया कि वर्ष 2007 के बाद सरकारी मदद पूरी तरह से रोक दी जानी है। तब तक लगातार प्रति वर्ष अनुदान में 10 प्रतिशत की कटौती की जाएगी। कटौती में भी शर्त है। अनुदान 16 करोड़ रुपये पर फ्रीज है सो बढ़ कर चाहे जो मिले, इस सीमा पर आने में कटौती होगी ही। इसकी प्रतिपूर्ति विश्वविद्यालय अपने संसाधनों से करेगा।

जाहिरा तौर पर इस लक्ष्य को साधने के लिए छात्रों पर ही शिकंजा कसा जाएगा। शासन ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय को फीस में हर साल 20 फीसदी बढ़ोत्तरी की सलाह दी है ताकि 2007 तक शासन को अनुदान की जिम्मेदारी से छुट्टी मिल जाए।

यानी आज की व्यवस्था में बिकाऊ माल बना दी गई शिक्षा पर अब सिर्फ उन्हीं का अधिकार होगा जो धनी हैं। गरीब माँ-बाप भी अपने सपनों को धूमिल होता हुआ देख चुप हैं, लेकिन युवा साथियों आप कब तक चुप रहेंगे? शिक्षा हमारा बुनियादी अधिकार है। आज एक-एक करके हमारे सभी अधिकार छीने जा रहे हैं और जो कुछ भी अधिकार बचे हैं वे मुट्ठी में रेत के समान हैं।

आज जरूरत है फिर से अपने अधिकारों के लिए संघर्ष की शुरुआत करने की। अपने साररे अधिकार हासिल करना आज के समय में भले ही ख्वाब लगे पर इतिहास साक्षी है कि बार-बारयह सच में बदला है। विद्रोह अगर लक्ष्यहीन है तभी तक वह भटकता है, सोद्देश्य लड़ाई भले ही कठिन और लम्बी हो पर उसकी जीत निश्चित है। हमारे समय में न सही, आगे आने वाले समय में छात्र अपनी-अपनी योग्यता के बल पर, न कि पैसे के बल पर, उपयुक्त शिक्षा प्राप्त कर सकें इसलिए आज यह लड़ाई जरूरी है।

लड़ो पढ़ाई करने को।
पढ़ो समाज बदलने को।।

संघ परिवार की असली मंशा को समझना होगा!

–अरुण मौर्य, इलाहाबाद.

संघ परिवार और भाजपा 'स्वदेशी' और राष्ट्रीय गौरव की दुहाई देते हुए आखिर कैसा राष्ट्र-निर्माण करना चाहते हैं? शताब्दियों-सहस्त्राब्दियों पुरानी "इतिहास की गलतियों" को "राष्ट्रीय गौरव" के नाम पर सुधारने चले हैं और आज राष्ट्रीय सम्मान को गिरवी रखकर साम्राज्यवादियों के तलवे चाट रहे हैं। देश को बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का खुला चरागाह बना दिया गया है। पूँजीवाद का जो मॉडल ये लोग लागू कर रहे हैं, वह भी तो ऐतिहासिक रूप से पश्चिम में ही पैदा हुआ। वह कोई भारतीय चीज नहीं है।

संघ सम्प्रदाय के लिए भारतीयता हिन्दुत्व का पर्याय है। पन्द्रह करोड़ मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों को इनके सपनों के भारत में सिर्फ दोयम दर्जे की नागरिकता ही हो सकती है। मध्यकाल के मुस्लिम हमलावर शासकों के हाथों हिन्दुओं के तथाकथित अपमान का बदला लेने के नाम पर आम मुसलमानों को निशाना बनाया जा रहा है और आज देश को गिरवी रखा जा रहा है! इससे बड़ा अपमान भला और क्या हो सकता है!

आखिर भाजपाई इस बात का जवाब क्यों नहीं देते कि अंग्रेजों की औपनिवेशिक गुलामी के विरुद्ध लम्बे संघर्ष में इनकी कोई भूमिका क्यों नहीं थी? संघ के संस्थापक हेडगेवार के प्रतिनिधि मुंजे ने मुसोलिनी से मुलाकात की और वही संघ का वैचारिक आधार बना। यह

एक ऐतिहासिक तथ्य है। संघियों के पास क्या जवाब है? संघ की विचारधारा रत्ती भर भी

स्वदेशी नहीं है। वह फासिस्ट इटली से आयातित विचार है जिसपर भारतीयता का फरेबी मुलम्मा चढ़ा दिया गया है। देश को बाँटने की साजिश में ये ताकतें अंग्रेज उपनिवेशवादियों और मुस्लिम लीग के साथ बराबर की हिस्सेदार थीं और आज भी यदि इनका बस चले तो मन्दिर-मस्जिद के नाम पर ये पूरे देश को खून का दलदल बना देंगे और खण्ड-खण्ड में बाँट देंगे।

दरअसल, हिन्दुत्ववादी कट्टरपंथ साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध जन एकजुटता को तोड़ने की एक शातिर साजिश है। सोचने की बात है कि विनाशकारी पूँजीवादी नीतियाँ जब मेहनतकशों की हड्डियों का पाउडर बनाकर बाजार में बेंच रही हैं, जब प्रतिवर्ष करोड़ों लोग अपनी जगह-जमीन और रोजी से बेदखल होकर रसातल का जीवन बिता रहे हैं, जब बीस करोड़ बेरोजगार युवा दर-बदर होकर सड़कों पर भटक रहे हैं, उसी समय मूल मुद्दे से ध्यान हटाकर लोगों को जाति-धरम पर लड़ाने की कोशिशें सबसे अधिक क्यों हो रही हैं?

भगत सिंह ने साम्प्रदायिकता के जहर की काफी पहले ही सही पहचान की ली थी और इस बात पर बल दिया था कि इससे निजात पाने के लिए लोगों की वर्ग-चेतना को जागृत करना होगा और मजबूत बनाना होगा। क्रान्तिकारी छात्रा-युवा राजनीति का भी आज यही दायित्व है। इसकी अनदेखी घातक होगी।

पूँजीवाद के हाथ में उन्नत तकनीक यानी.... बन्दर के हाथ में उस्तरा

- नमिता, इलाहाबाद

आज विज्ञान काफी तरक्की कर रहा है। नई उन्नत तकनीकें लगातार ईजाद की जा रही हैं। लेकिन इन सब पर एकाधिकार पूँजीवाद का है। और प्रचार तंत्र में उन्नत सूचना तकनीक का इस्तेमाल पूँजीवाद घोर विज्ञान-विरोधी और दकियानूसी विचारों के प्रचार के लिए कर रहा है। प्रौद्योगिक विकास का इस्तेमाल एक तरफ तो मुनाफा निचोड़ने के लिए होता है तो दूसरी तरफ आम लोगों में अंधविश्वास को फैलाने के लिए।

ऐसा नहीं कि टेलीविजन और उन्नत सूचना तकनीक अपने आप में कोई शैतानी चीजें हों। उल्टे इसका इस्तेमाल तो भारत जैसे देशों में बहुत ही अच्छा हो सकता है। इसके जरिए घर-घर तक विज्ञान की बातें पहुँचायी जा सकती हैं, दुनिया के श्रेष्ठतम साहित्यिक रचनाओं से लोगों को अवगत कराया जा सकता है, और तर्कणा को विकसित करने वाले कार्यक्रम प्रसारित किये जा सकते हैं। लेकिन सामन्तवाद से संघर्ष में भौतिकवाद का झण्डा बुलन्द करने वाले, तर्कणा को हथियार बनाने वाले और धार्मिक अंधविश्वासों की धज्जियाँ उड़ाने वाले पूँजीपति वर्ग ने अब अंधविश्वासों, टोना-टोटका, तंत्र-मंत्र, बाबाओं आदि की शरण ले ली है। यह उनके हित में है कि जनता इन दकियानूसी चीजों में विश्वास करे।

ये विचार फैलाने का काम पहले फिल्म और नाटक कर रहे थे। लेकिन आज इसका नेतृत्व घर-घर में पहुँच रखने वाले बुद्धू बक्से ने अपने हाथ में ले लिया है। हर रोज जादू-टोना, तंत्र-मंत्र, प्रेतात्मा, पुनर्जन्म, आदि पर धारावाहिक आते हैं। एच.बी.ओ. और स्टार मूवीज जैसे अंग्रेजी फिल्मों के चैनलों तक पर नियमित रूप से हर रोज एक या दो फिल्म अवश्य आती हैं जो भूत-प्रेत, परामनोविज्ञान, जादू-टोना आदि पर आधारित होती हैं।

जितने भी धारावाहिक चल रहे हैं उनमें कार्पोरेट जगत, नौकरशाह घरों की महिलाओं के जीवन पर आधारित धारावाहिकों पर जादू-टोने और अंधविश्वासों वाले धारावाहिकों की कटेगरी हावी है। और पहली कटेगरी के धारावाहिकों में भी परिवार के एक बाबा होते हैं जिनकी सारी भविष्यवाणियाँ सत्य सिद्ध होती हैं।

जब कोई शिक्षित व्यक्ति इन धारावाहिकों को देखता है तो समझता है कि ये तो वह यूँ ही मनोरंजन के लिए देख रहा है। लेकिन सांस्कृतिक माध्यमों का प्रभाव इतना गहरा होता है कि अवचेतन मस्तिष्क के धरातल पर वह अनजाने ही इन धारावाहिकों के तर्क को भी ग्रहण करता जाता है और धीरे-धीरे उसकी तर्कणा क्षरित होती जाती है। जब पढ़े-लिखे व्यक्तियों का यह हाल होता है तो आम मध्य वर्ग की गृहणियों पर इन धारावाहिकों का क्या प्रभाव पड़ता होगा, इसका अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

इसका प्रभाव आम जनों की दुर्वस्था के लिए जिम्मेदार सामाजिक शक्तियों की शिनाख्त से रोकता है। यह जनता की वर्गीय चेतना को तो कुन्द करता ही है, साथ ही साथ उनमें फासिस्ट शक्तियों का सामाजिक आधार तैयार करने में सहायता भी करता है। इस कुसंस्कृति के प्रभाव से निपटना सिर्फ सांस्कृतिक आन्दोलन का ही नहीं बल्कि छात्रा-युवा आन्दोलन का भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है।

हत्या या आत्महत्या

- अमित शर्मा, दिल्ली

-14 अप्रैल, साहिबाबाद। गरीबी से तंग आकर सलीम ने अपनी पत्नी और चार बच्चों के साथ आत्महत्या की।

-16 अप्रैल, कविनगर। गरीबी और बदहाली के चलते सुनीता ने अपने तीन बच्चों के साथ आत्महत्या की।

-18 अप्रैल, लखनऊ। पूनम देवी ने गरीबी से तंग आकर अपने तीन बेटों के साथ जहर पीकर आत्महत्या कर ली।

-23 अप्रैल, कानफर। रामविशाल ने अपनी पत्नी और चार बच्चों को मारकर आत्महत्या की।

-27 अप्रैल, गाजियाबाद। महेंद्र ने गरीबी और बेरोजगारी से तंग आकर अपनी पत्नी और चार बच्चों समेत आत्महत्या की।

ये सिर्फ चन्द उदाहरण हैं। इस तरह की खबरों की सूची बनाना इस पत्रिका की सीमा से बाहर है। आत्महत्या कानूनी तौर पर एक गुनाह है। मगर ये आत्महत्याएँ नहीं हैं। ये हत्याएँ हैं जिन्हें हमारा हत्यारा निजाम अंजाम दे रहा है।

मरने वाले अधिकांश परिवारों के कमाऊ सदस्य बेरोजगार हो चुके थे। जब कमाते थे तब भी दिहाड़ी पर 50-60 रुपये कमा पा रहे थे। लिहाजा बच्चों का पढ़ना तो दूर की बात, खाना मिल पाना भी मुहाल था। मतलब यह कि इन लोगों की न्यूनतम जरूरतें भी पूरी नहीं हो पा रही थीं।

महेंद्र ने आत्महत्या करने से पहले 6 पेज का सुसाइड-नोट लिखा था। उसने इसमें लिखा था कि उसके पास अब जीने

हत्या या आत्महत्या

का कोई रास्ता नहीं बचा है और यह दुनिया बड़ी बेरहम है जहाँ गरीबों के लिए कोई जगह नहीं है। "मैं अपनी पत्नी और बच्चों से बहुत प्यार करता हूँ और यह नहीं चाहता कि मेरे मरने के बाद उनकी बेकद्री हो, इसलिए मैं अपनी पत्नी और बच्चों को भी मार रहा हूँ। इस महापाप के लिए मेरे मरने के बाद मेरे शरीर के इतने टुकड़े किए जाएँ कि भविष्य में कोई भी ऐसा कदम न उठाये।"

महेंद्र ने आत्महत्या नहीं की थी। इस व्यवस्था ने उसे और उसके परिवार को मारा, जिसमें गोदामों में अनाज सड़ता या चूहों का आहार बनता रहता है मगर भूखे लोगों तक नहीं पहुँच पाता। प्राकृतिक संसाधनों, सम्पदा, और मनुष्य के बीच खड़ी मुनाफे की दीवार भुखमरी, गरीबी, कुपोषण और बेरोजगारी को जन्म दे रही है। दरअसल, इस व्यवस्था में हर कार्रवाई का आधार मुनाफा और फायदा है, भले ही यह चिताओं पर रोटी सेंककर हासिल किया जाय।

ज्यादा विश्लेषण की जरूरत नहीं है। सच्चाइयाँ बेनकाब होकर हमारे-आपके सामने खड़ी हैं। समय इस व्यवस्था को बदल डालने की माँग कर रहा है और समाज बड़ी उम्मीदों के साथ युवाओं पर नजर गड़ाए हुए है। आखिर किस चीज का इन्तज़ार है हमें और कब तक!

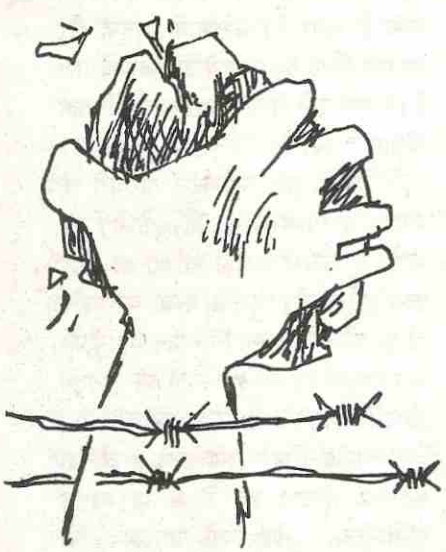

इस हिमखण्ड को तोड़ना होगा

• कपिल स्वामी, दिल्ली

आज से पहले इतना ठण्डा माहौल शायद ही कभी आया हो। हमारे चारों तरफ एक गहरी निस्तब्धता का वातावरण व्याप्त है। लोगों ने चुप्पी को व्यवहार की शक्ल दे दी है। महानगर की आपाधपी भरी जिन्दगी मे अकेले और अकले होत जाने का अहसास आम आदमी के मन में घर कर गया है। गलत को गलत कहने का साहस लगातार कम होता जा रहा है। लोग गलत चीजों के प्रति एक निस्पृह स्वीकारोक्ति वाला भाव रखने लगे हैं। हाँ कभी-कभी जब समाज में कछ ज्यदा गलत होने लगता है तो कुछ अस्फुट शब्दों में लोग अपने मन की भड़ांस निकालकर चुप हो जाते हैं।

आज के दौर में जिस साहस के साथ गलत को गलत कहने की हिम्मत होनी चाहिए, यदा कदा ही कोई आदमी दिखा पाता है। हम अपने चारो तरफ नजर डालें तो दिल्ली जैसे शहर में रोजमर्रा की जिन्दगी में काफी कुछ गलत होता है। लेकिन हममें से शायद ही कोई गलत के खिलाफ आवाज उठाता हो। हम सबकी जिन्दगी की कुछ छोटी-छोटी बातं, जिनसे ज्यादा कुछ फर्क नहीं पड़ता लेनि इससे हमारी गलत के खिलाफ आवाज ना उठाने की आदत का तो पता चल ही जाता है। उदाहरण के लिए अगर हमें डी.टी.सी. से काम पर पहुँचना हो तो समय पर पहुँचना राम-भरोसे ही है क्योंकि टाइम-टेबल का पता डी.टी.सी. कर्मियों को ही नहीं होता। पता भी हो तो चाय पीकर टहलते-टहलते ड्राइवर और कंडक्टर आत हैं, और जो लोग अभी तक इनकी मुखर आलोचना कर रहे होते हैं, अब शान्त हो जाते हैं। लेकिन अगर ब्लूलाइन बस से जाना हो तब भी मुश्किलों से बच नहीं सकते। बस का कंडक्टर बस को पीटते और गला फाड़ते हुए बस को बार-बार रुकवा देता है। अब चाहे कोई यात्री कितना भी कहे, चिल्लाए या बरसे पर बस अपनी रफ़्तार से ही चलती है। तकलीफ सबको होती है लेकिन बोलने वाले का साथ प्रायः कोई नहीं देता है। बोलने वाला भी खीजकर कुछ देर में चुप हो जाता है। इसी तरह जब हम बिजली या टेलीफोन का बिल जमा करवाने की लाइन मं लगे होते हैं और कोई शातिर आदमी बीच लाइन में घुसने की कोशिश करता है तो कुछ देर गुनगुनाहट पैदा होती है लेकिन कोई भी उसका कालर पकड़कर उसको लाइन से बाहर करने का साहस नहीं दिखा पाता है। यहाँ सवाल शारीरिक ताकत का नहीं, बल्कि गलत के प्रति सहज प्रतिरोध की क्षमता का है जो कि इस दौर में लगातार क्षीण होती जा रही है। इसी तरह सरकारी अस्पताल में हम ये मानकर चलते हैं कि डाक्टर और अस्पतालकर्मियों के जानने वाले लोग, लाइन में लगे लोगों से पहले इलाज के हकदार होते हैं। इस गलत चीज को हम सहज ढंग से डाक्टर और अस्पतालकर्मियों का अधिकार मान लेते हैं। बल्कि खुद भी किसी डाक्टर या अस्पतालकर्मी से जान-पहचान निकालने की कोशिश करते हैं। कहने का मतलब है कि गलत चीज इतनी सहज-स्वाभाविक लगती है कि हम उसे सही मानने लगते हैं।

इसी तरह के उदाहरण हम युवाओं और छात्रों की जिन्दगी से भी ले सकते हैं। युवा और छात्रों में यद्यपि प्रतिरोध की क्षमता अपेक्षाकृत ज्यादा दिखायी पड़ती है लेकिन वो भी इन गड़बड़ियों को कमोबेश स्वीकार कर लेते हैं। छात्रों को महँगी होते जाने के बावजूद शिक्षा नहीं मिल पा रही है। पिछले दिनों दिल्ली विश्वविद्यालय के कुछ कालेजों में वोकेशनल कोर्सो की फीस में 30-40 की भारी वृि(कर दी गयी। छात्रा-संगठनों से तो उम्मीद करना ही व्यर्थ था। इसलिए जब छात्रों ने व्यक्तिगत स्तर पर प्रतिरोध किया तो कालेज प्रशासन को कुछफर्क ना पड़ना था ना पड़ा। यहाँ छात्रों को भी अपनी सामूहिकता की शक्ति में विश्वास की कमी नजर आयी। ये तो मात्रा एक उदाहरण हैं। छात्रों के सामने अनेकों समस्याएँ मुँह बाए खड़ी हैं। उनकी कक्षाएँ समय पर और पूरी नहीं लगती है। उनको अच्छे अंक पाने के लिए अपने अध्यापक

की जी हजूरी करनी पड़ती है। छात्र-संगठन दादागिरी वाले चौधरीछाप नेताओं की नर्सरी बन गये हैं। चुनाव के समय तो ये नेता हर छात्रा से हाथ मिलाकर दिल जीत लेता है। लेकिन बाद में कोई छात्र अगर समस्या लेकर पहुँच गया तो उसे टालने, डराने और धमकाने तक का काम यही छात्र नेता करते हैं। और बेचारे छात्र इसे अपनी नियति मानकर अगले चुनावों में फिर किसी ऐसे ही नेता को ग्लैमर और बाहुबल से प्रभावित हो वोट डाल आते हैं। आजकल के डूसू चुनाव इतने ग्लैमरपूर्ण हो गए हैं कि आम छात्र तो इसकी चकाचौंध से भौचक रह जाते हैं। डूसू के चुने हुए छात्र भी हमारे देश के नेताओं की तरह अपने आसपास एक आभामंडल बना कर रखते हैं नतीजतन छात्र की हिम्मत ही नहीं होती कि वो उनसे कोई सवाल कर सके। इसी तरह आजकल डूसू में सुन्दर लड़कियों को चुनाव में उतारने की कोशिश इसी मकसद से की जा रही है कि छात्र अपनी समस्याओं के मुद्दे उठा ही ना सकें। अब तो छात्रों में ये बात घर कर गयी है कि निजीकरण या फीस-वृद्धि जैसी समस्याएँ तो हल ही नहीं हो सकती। उनमें समस्याओं के प्रति एक निरपेक्ष स्वीकारोक्ति वाला भाव पैदा हो गया है। मुझे कुछ छात्रों से बातचीत करने पर एक मजेदार तथ्य का पता चला कि अब डूसू का मुख्य काम एक शानदार संगीत शो आयोजित करवाना रह गया है। बात फिर वही गलत को गलत कहने की प्रतिरोध क्षमता की है। हालाँकि कुछ साल पहले तक जे.एन.यू. चुनावों में छात्रों की जागरुकता और सक्रियता कुछ नजर आती थी जब छात्र सीधी बातचीत और सवाल जवाब द्वारा नेताओं से उनके पिछले रिकार्ड और आगामी कार्यक्रम पूछते थे। लेकिन वहाँ पर भी अब ये परम्परा मात्र एक औपचारिकता भर रह गयी है।

शिक्षा पूरी करने के बाद शुरू होती है नौकरी पाने की कठिनतम जद्दोजहद। नौकरी पाने के लिए या तो किसी उच्चपद पर बैठे रिश्तेदार को पटाना पड़ता है या फिर बाप को कर्ज लेकर रिश्वत द्वारा अपने योग्य बेटे की नौकरी का जुगाड़ करना पड़ता है। युवा अपने भविष्य से सीधे जुड़ी समस्याओं जैसे शिक्षा और रोजगार के बुनियादी सवालों पर भी वे प्रतिरोध दर्ज करवाने की कार्यवाहियों-आंदोलनों में शिरकत करने से कतराते हैं। उनका तर्क भी भी पूरे समाज की मानसिकता दर्शाती वाला होता है कि हमारे ये सब करने से कुछ नही बदलने वाला। उनका भाव उस कछुए वाला होता है जो कोई संकट आने पर अपने खोल में छुप जाता है। वो समस्या का सामना अपने व्यक्तिगत स्तर पर करते हैं। अर्थ है कि हमको अपनी सामूहिकता की शक्ति पर भरोसा नहीं रह गया है। हम असफल विद्रोही आवाजों को दिमाग में रखकर आवाज बुलन्द करने की नैतिक जिम्मेदारी से ही पीछे हट जाते हैं। छात्र-युवाओं समेत पूरा समाज कुंठा के भयावह दौर से गुजर रहा है। हमें साफ दिखाई दे रहा है कि सब कुछ गड़बड़ हो रहा है लेकिन फिर भी हम मन ही मन कुछ खदबदाकर रह जाते हैं।

इसी तरह स्त्रियों और लड़कियों को देखें तो बढ़ती शिक्षा और कानून प्रदत्त अधिकारों के बावजूद स्थितियाँ बहुत ज्यादा बदली नहीं है। पश्चिमी अपसंस्कृति के बढ़ते हमलों ने आज के समाज में स्त्री का उपभोग्य वस्तु में बदल दिया है। उन्हें हर जगह पुरुषों की निगाहें बेधती रहती हैं। उन्हें बसों में आते-जाते असम्मानजनक स्थितियों का सामना करना पड़ता है, और जो लड़की इसका खुलकर विरोध करती है उसे बददिमाग और बदमिजाज की उपाधि दे दी जाती हैं उससे अपेक्षा की जाती है कि तब तक विरोध ना करें जब तक हद न हो यानी चुप्पी बनाए रखी जाए। उन्हें आफिसों में भद्दे मजाक सुनने पड़ते हैं, कालेजों में छींटाकशी और छेड़छाड़ तक सहनी पड़ती है। उन्हें बचपन से ही ऐसी परिस्थितियों से बचकर निकलने की सलाह दी जाती है। उन्हें यह नहीं सिखाया जाता कि ऐसी परिस्थितियों का डटकर सामना कैसे किया जाए। मौखिक प्रतिरोध के अलावा जरूरत पड़ने पर शारीरिक प्रतिरोध करने की सीख शायद ही दी जाती हो। उन्हें घर में पिता और भाई के आगे जुबान ना चलाने की शिक्षा दी जाती है। उन्हें हर गलत चीज से आँख फेरने की सलाह दी जाती है। यही दब्बूपना उनके पूरे व्यक्तित्व को कुंठित कर डालता है। घर और परिचितों की गलत चीजों को सहते-सहते उनकी प्रतिरोध करने की क्षमता खत्म हो जाती है। नतीजतन बाहर और अपरिचितों की गलत बातों को चुनौती देने का साहस बहुत कम लड़कियाँ कर पाती हैं। शादी के बाद भी पति और सम्बन्धियों की सारी गलत-सही बातों को चुपचाप स्वीकार कर लेने वाली लड़की अच्छी मानी जाती है। गलत को गलत ना कहने को 'औरत की मर्यादा' की संज्ञा दे दी जाती है।

महज चंद उदाहारण हैं हमारे आज के समाज की खत्म होती प्रतिरोध करने की क्षमता का। इस तरह की छोटी-छोटी घटनाएँ ही व्यापक स्तर पर पूरे समज की विद्रोही आवाज को खत्म कर देती है। चूँकि हम छोटी-छोटी गलत चीजों को नजरंदाज कर देते हैं इसीलिए बड़ी-बड़ी गलत चीजों के बारे में भी हम साहसी ढंग से सोच नहीं पाते हैं। समस्या का मूल यही मानसिकता है कि सिर्फ हमारे करने से क्या होगा? इस मानसिकता, इस सिहरा देने वाले ठण्डेपन को आज खत्म करने की जरूरत सबसे ज्यादा है। इस ठण्डेपन से उपजी कायरता को ललकार कर जनता का, उसकी सामूहिक शक्ति में भरोसा दोबारा पैदा करने का काम आज की सबसे बड़ी चुनौती है। आज जनता लोकतंत्र के झुनझुने से खेल-खेलकर बोर हो चुकी है। उनकी समस्याओं को सुलझाने की कोई सार्थक कोशिश ये नेता रूपी अपराधी और अपराधी रूपी नेता कर ही नहीं सकते हैं। पूरी सरकारी व्यवस्था चंद देशी-विदेशी पैसेवालों के मैनेजर के रूप में काम कर रही है। पूरी व्यवस्था, शिक्षा, मीडिया और हमारे तथाकथित बुद्धिजीवी जनता की विद्रोही चेतना को दबाने का काम कर रहे हैं। लोगों के छोटे-मोटे आंदोलनों को कुचल तक दिया जाता है। ऐसे मुश्किल हालात में लोगों को गलत को गलत कहने के लिए साहस के साथ खड़ा होना सीखना ही पड़ेगा, लोगों को गलत के खिलाफ सामूहिक आवाज उठाने की पहल करनी ही होगी, लोगों को अपनी यानी जनता की ताति पर भरोसा करना ही पड़ेगा, सीधी बात ये कि–**हमें इस चुप्पी रूपी हिमखण्ड को तोड़ना ही होगा।**